इस्लामी पारिभाषिक शब्द
और
उनकी व्याख्या

मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी

अनुवाद
मुहम्मद आबिद हामिदी

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

''ईश्वर के नाम से जो बड़ा दयावान, अत्यन्त कृपाशील है।''

प्रकाशक की बात

प्रत्येक धर्म और भाषा के अपने विशेष पारिभाषिक शब्द होते हैं। उन्हें उन्हीं के परिप्रेक्ष्य और फ़्रेम (Frame) में रखकर देखना और समझना चाहिए। उन्हें उनके दृश्य या परिदृश्य से अलग करके देखने या समझने से बात गड-मड हो जाएगी, जिससे विभिन्न ग़लतफ़हमियाँ फैलेंगी और शंकाएँ व सन्देह जन्म लेंगे। उन पारिभाषिक शब्दों के जानने और उनकी आत्मा तक पहुँचने के लिए ज्ञान भी ज़रूरी है और समझ भी। भाषा को मात्र जान लेना या शब्दकोश का सहारा लेना पर्याप्त नहीं है। इस्लाम के पारिभाषिक शब्दों का भी यही मामला है। इस्लाम के जिन पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है उनमें ईमान, इस्लाम, मुसलमान, कुफ़्र, काफ़िर, जिहाद, दारुल-इस्लाम, दारुल-हरब, जिज़िया और नस्ख़ जैसे शब्द विशेष रूप से वर्णन योग्य हैं। इन्हें सही तौर पर समझने के लिए सम्बन्धित ज्ञान और समझ व विवेक की आवश्यकता है। बिना इसके इन्हें ठीक तौर पर समझा नहीं जा सकता। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण शब्द 'जिहाद' है। यदि कोई व्यक्ति शब्द कोशों की सहायता से जिहाद की वास्तविकता या मूलभाव को समझना चाहे तो यह सम्भव नहीं है। केवल शाब्दिक अर्थ से बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी पैदा हो सकती है और हुई भी है। कुछ दूसरे पारिभाषिक शब्दों के साथ भी यही हुआ। लोगों ने अपने-अपने तौर पर भाषा की कम समझ-बूझ पर भरोसा करके कोई अर्थ निकाल लिया और बात कुछ से कुछ हो गई।

हमारे देश का एक वर्ग लम्बे समय से कुछ इस्लामी पारिभाषिक शब्दों को लेकर उनकी वास्तविकता और उनके मूल अर्थ तक न पहुँचने की वजह से बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी का शिकार है। वह स्वयं भी भ्रमित

है और दूसरों को भी उनके हवाले से भिन्न-भिन्न प्रकार से भ्रमित कर रहा है।

आवश्यकता इस बात की थी कि देशवासियों और आम मुसलमानों को उपर्युक्त पारिभाषिक शब्दों के मूल अर्थों से अवगत कराया जाए ताकि देशवासियों और मुस्लिम समुदाय के मध्य सन्देहों और शंकाओं का जो वातावरण बन गया है, उसका निवारण हो सके। इस किताब के द्वारा अस्ल में इसी आवश्यकता की पूर्ति का एक प्रयास है।

हम अपने मित्र-उर्दू के संजीदा व सम्मानित पत्रकार जनाब परवाज़ रहमानी, एडीटर "दावत" नई दिल्ली के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने इस्लाम के इन महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों से सम्बन्धित भारतवर्ष के जाने-माने इस्लामी विद्वान व शोधकर्ता जनाब मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी से बात-चीत (इन्टरव्यू) का प्रोग्राम बनाया और उनसे लम्बी वार्ता करके इनकी हक़ीक़त को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया।

बातचीत (इन्टरव्यू) के लाभप्रद होने के पेश-नज़र इसे अधिक से अधिक हाथों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इसे छोटी सी किताब के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। हम हज़रत मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी के भी आभारी हैं कि उन्होंने न केवल यह कि अपने इस इन्टरव्यू को मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स से प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की बल्कि इसका पुनरावलोकन करके इसे और अधिक लाभदायक बना दिया।

हमें पूरी आशा है कि मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स, नई दिल्ली से प्रकाशित यह पुस्तिका देश के वर्तमान विषाक्त वातावरण को खुशगवार बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

प्रस्तावना

देशवासियों और अन्य ग़ैर-मुस्लिम भाइयों के अन्दर इस्लाम और
समानों के बारे में पाई जाननेवाली ग़लतफ़हमियों का एक बड़ा कारण
ं इस्लामी पारिभाषिक शब्दों को न समझना भी है। जन-साधारण की
ानता और ग़लतफ़हमियों से लाभ उठाकर कुछ मुस्लिम-विरोधी संगठन
पारिभाषिक शब्दों के ग़लत अर्थ निकालते हैं और उसकी बुनियाद पर
ाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ प्रोपगंडा करते हैं। वैसे इन
भाषिक शब्दों और कुछ मनमानी बातों की बुनियाद पर इस्लाम के
द्ध दुष्प्रचार इस देश में कोई नई बात नहीं है। पहले भी कुछ कट्टर
र्मिक संगठन यह काम बड़े पैमाने पर और निरन्तर करते रहें हैं, जिसके
रिणाम अभी तक चले आ रहे हैं। उत्तरी भारत में आर्य समाज के
क धर्मगुरू साहित्यिक व उच्च श्रेणी की उर्दू बोलते और लिखते थे।
ं बहुत से लोग अरबी और फ़ारसी की भी जानकारी रखते थे। उन
ं ने लेखनों, भाषणों और शास्त्रार्थों के द्वारा न केवल आम
मुस्लिमों के दिलो-दिमाग़ में ज़हर भरा, बल्कि सीधे-साधे मुसलमानों के
र भी सन्देह व शंकाएँ पैदा करने का पूरा प्रयास किया। उनके द्वारा
या गया शुद्धि आन्दोलन इसी उद्देश्य के लिए था।

यद्यपि इस्लाम के विद्वानों ने उन आपत्तियों, प्रश्नों और दुष्प्रचारों के
संगत व प्रभावकारी उत्तर दिए, मगर चूंकि वे उत्तर उच्च ज्ञानात्मक
के हुआ करते थे और उनका सम्बोधन आपत्तिकर्ताओं से हुआ करता
इसलिए इस्लाम की बात आम लोगों तक नहीं पहुँच पाती थी। स्पष्ट
है कि आपत्तिकर्ताओं का मंशा सत्य की खोज नहीं होता था। आम
के अन्दर ग़लतफ़हमियाँ पैदा करना उनका मुख्य उद्देश्य होता था।
ाए वे अपना काम पूर्ण एकाग्रता से करते रहे। इसके विपरीत
मानों के अन्दर से कोई ऐसा संगठन और प्रभावकारी आन्दोलन नहीं

उठा जो ग़ैर-मुस्लिम आबादी के अन्दर पैदा हुई ग़लतफ़हमियाँ दूर करवे उन्हें इस्लाम धर्म से, जैसा कि उसका हक़ है, जानकारी प्रदान करता यदि कुछ काम हुआ भी तो वह खुद मुसलमानों के सुधार और उनके बीच दीन के प्रचार का हुआ या इस बात का हुआ कि मुसलमानों को इस्लाम त्यागने से रोका जाए। जो उस समय की परिस्थिति के लिहाज़ से अतिमहत्वपूर्ण, आवश्यक और सराहनीय काम था। लेकिन ग़ैर-मुस्लिम देशवासी यथावत ग़लतफ़हमियों में पड़े रहे। उन्हें पूर्ण तथ्यों से अवगत करानेवाला कोई संगठन मौजूद नहीं था। उस समय के असरात अभी तक चले आने की वजह अस्ल में यही है, आज के दौर में विरोध का यह मोर्चा आर०एस०एस और उसके अधीन चलनेवाले दर्जनों संगठनों ने संभाल रखा है। अतएव इस्लाम और मुस्लिम समुदाय के विरुद्ध दुष्प्रचार अभी तक जारी है और पहले की अपेक्षा अधिक बड़े पैमाने पर जारी है।

आवश्यक था कि कुछ इस्लामी पारिभाषिक शब्दों की बुनियाद पर किए जानेवाले दुष्प्रचारों का नोटिस लेकर इसकी रोकथाम की जाए और सुन्दर ढंग से देशवासियों की ग़लतफ़हमियाँ दूर की जाएँ। मशहूर आलिमे-दीन मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी का यह इंटरव्यू इसी कोशिश की एक कड़ी है। हाँलाकि सवालात करते समय एक ग़ैर-मुस्लिम के ज़हन को सामने रखने की कोशिश की गई है, लेकिन इन सवालों के जवाब से उन मुसलमानों का ज़हन भी साफ़ हो जाएगा जो इल्म न होने की वजह से हीन-भावना के शिकार रहते हैं। इस्लाम विरोधियों के प्रोपगंडो से पैदा हुई यह परिस्थिति हालाँकि बज़ाहिर ख़तरनाक तो है लेकिन देशवासियों के दिलों पर दस्तक देने का एक सुअवसर भी है और इस अवसर से ज़रूर लाभ उठाना चाहिए।

परवाज़ रहमानी

सम्पादक, सह रोज़ा दावत

दावत नगर, जामिआ नगर, नई-दिल्ली

10 अगस्त, 2002 ई

प्रश्नोत्तर

प्रश्न— इस्लाम क्या है?

हमारे देशवासियों और उन सारे लोगों के लिए जो इस्लाम और उसकी शिक्षाओं का सीधे तौर पर अध्ययन नहीं रखते, कुछ इस्लामी पारिभाषिक शब्द हमेशा ग़लतफ़हमियों और बदगुमानियों का कारण रहे हैं। मिसाल के तौर पर कुफ़्र, ईमान, काफ़िर, मोमिन, जिहाद, हलाल, हराम आदि। आज के दौर में यह रुझान बहुत बढ़ गया है।

कुछ गरोह इस सम्बन्ध में जान-बूझकर ग़लतफ़हमियाँ पैदा करके आमजनों को गुमराह कर रहे हैं। हालाँकि इन पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण अब से पहले भी होता रहा है, फिर भी आज की परिस्थिति में ज़रूरत महसूस हो रही है कि इनकी वास्तविकता एक बार फिर स्पष्ट की जाए। आप से अनुरोध है कि सबसे पहले इस्लाम शब्द की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए?

उत्तर—

हम दो शब्द बोलते हैं। एक ईमान का शब्द और दूसरा इस्लाम का। ईमान के अन्दर बुनियादी धारणा यह है कि अल्लाह ने जो दीन (धर्म) अवतरित किया है और जो शरीअत (धर्म-विधान) उसने प्रदान की है उसके सत्य होने का आदमी को पूर्ण विश्वास हो। मिसाल के तौर पर अल्लाह की ज़ात व सिफ़ात (गुण), पैग़म्बर (संदेशवाहक) की पैग़म्बरी, आख़िरत (परलोक) के हिसाब-किताब, जन्नत-दोज़ख और फ़रिश्तों जैसी परोक्ष की वास्तविकताओं पर आदमी को पूरा विश्वास हो कि ये वास्तविकताएँ जैसी कुछ अल्लाह की किताब और अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की शिक्षाओं में बयान हुई हैं, वे सत्य हैं। यह है ईमान की बुनियादी धारणा। इस्लाम की धारणा यह है कि आदमी इस

यक़ीन पर कारबन्द हो और उसके अनुसार जीवन व्यतीत करे। ख़ुदा जो आदेश हमें दिए हैं उनके अनुसार जीवन व्यतीत करना, उसके आदेश की पाबन्दी और उनपर अमल करना इस्लाम है। मिसाल के तौर प अल्लाह ने इनसान को कुछ इबादतों का पाबन्द बनाया है, विशेष प्रका की सामाजिकता प्रदान की है, संस्कृति और सभ्यता के कुछ तरीक़े बता हैं, नैतिकता की कुछ सीमाएँ निर्धारित की हैं, राजनीति के सुनिश्चि नियम और आचार संहिता बताई है। उनपर अमल करना इस्लाम है लेकिन क़ुरआन और हदीस में कभी-कभी इस्लाम और ईमान के शब एक-दूसरे के समानार्थी भी होते हैं। ईमान कहकर अमल और इस्ला कहकर अक़ीदा (आस्था) मुराद लिया गया। इस प्रकार दोनों शब समानार्थी भी प्रयुक्त हुए हैं। इसलिए यह उलझन नहीं होनी चाहिए वि यह इस्लाम है या ईमान? संक्षिप्त रूप में यों कहा जा सकता है कि ईमा पूर्ण विश्वास और इस्लाम उसके अनुसार अमल का नाम है लेकिन कभ ईमान इस्लाम के अर्थ में और कभी इस्लाम ईमान के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

प्रश्न— इस्लाम पर ईमान न लानेवालों के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्द

आपकी बात से स्पष्ट हुआ कि इस्लाम पर ईमान रखने वालों क मोमिन या मुस्लिम कहते हैं। शायद मुस्लिम ही को फ़ारसी भाषा मे मुसलमान कहा जाता है, जो आमतौर से प्रचलित है। प्रश्न यह है कि जो लोग इस्लाम धर्म पर ईमान नहीं रखते तो उन्हें क्या कहा जाएगा?

उत्तर—

जो लोग इस्लाम पर ईमान व यकीन (आस्था) नहीं रखते उनको क़ुरआन की भाषा में काफ़िर, मुशरिक, नास्तिक और मुर्तद कहते हैं। इसी के तहत मुनाफ़िक़ शब्द का भी उल्लेख किया जा सकता है। इन सब के अलग-अलग अर्थ हैं। काफ़िर वह है जो अल्लाह के दीन को न माने और उसे स्वीकार ही न करे। मुशरिक वह है जो तौहीद (एकेश्वरवाद) को स्वीकार न करे। यानी अल्लाह को एक न माने। नास्तिक को अरबी भाषा

में मुलहिद कहते हैं। यह शब्द इलहाद से बना है। इलहाद के माने विमुख होने के हैं। मुलहिद वह है जो दीन से विमुख हो जाए। यह विमुखता कभी आंशिक होती है और कभी पूर्ण हो सकती है कि एक आदमी ऊपर से तो इस्लाम को माने और किसी एक कोने में कुफ़्र को प्राथमिकता देने लगे। इसकी भी संभावना है कि पूरे दीन ही से फिर जाए। मुर्तद उस आदमी को कहा जाता है, जो इस्लाम के दायरे में था और फिर उससे निकल गया। मुनाफ़िक वह है जो ज़बान से ईमान का दावा करे, लेकिन दिल से अल्लाह के दीन को न माने और उसे हानि पहुँचाने की कोशिश करे। इस प्रकार इन विभिन्न परिभाषाओं के अलग-अलग अर्थ हैं और क़ुरआन ने इन सबको मौक़े के हिसाब से प्रयोग किया है। कुफ़्र की एक धारणा तो यह है कि वह ईमान के विपरित इस्तेमाल हुआ है। इस पहलू से वह आदमी जो इस्लामी आस्थाओं पर विश्वास रखता हो वह मोमिन है और जो इनकार करता है वह काफ़िर है। कुफ़्र का शब्द नाशुकरेपन के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। काफ़िर वह है जो अल्लाह की नेमतों का शुक्र अदा नहीं करता। अतएव कुरआन में कुफ़्र को शुक्र के विपरीत भी इस्तेमाल किया गया है। ये विभिन्न परिभाषाएं अपने अन्दर विभिन्न अर्थ रखती हैं।

प्रश्न— क्या काफ़िर शब्द से नफ़रत का इज़हार होता है?

काफ़िर शब्द का अर्थ हालाँकि समष्टीय रूप से स्पष्ट है। इस्लामी विद्वान भी इसकी व्याख्या करते रहे हैं और मुसलमानों की अकसरियत इस बारे में किसी ग़लतफ़हमी का शिकार नहीं है, लेकिन इसकी क्या वजह है कि इस शब्द के बारे में ग़ैर-मुस्लिमों, विशेष रूप से हमारे देशवासियों में बहुत सारी ग़लतफ़हमियाँ पाई जाती हैं। बहुत से लोग इसे अपने लिए एक गाली समझते हैं। इस सिलसिले में अब से पहले हिन्दू महासभा ने और बाद में आर्य-समाज ने ग़लतफ़हमियाँ फैलाई थीं जिसके असरात (दुष्परिणाम) अभी तक चले आ रहे हैं। अतः मैं चाहूँगा कि काफ़िर शब्द की और अधिक व्याख्या हो जाए।

उत्तर–

ग़लतफ़हमियों का जहाँ तक सम्बन्ध है इसके विभिन्न कारण हैं, लेकिन यह बात ठीक नहीं है कि काफ़िर का शब्द इस्लाम में किसी को भड़काने और उत्तेजित करने या किसी के साथ नफ़रत और दुश्मनी को जताने के लिए प्रयोग किया जाता है। अस्ल में इस्लाम यह चाहता है कि यह बात बिलकुल स्पष्ट रहे कि कौन आदमी उसके पेश किए हुए अक़ीदे, या विचार को और उस पर आधारित कार्य-प्रणाली को स्वीकार करता है और कौन स्वीकार नहीं करता। कौन लोग हैं जो इस्लाम के माननेवाले हैं और उस पर चलने के लिए भी आमादा हैं और कौन लोग हैं जो इस्लाम की शिक्षाओं को न तो मानते हैं और न ही उस पर अमल करते हैं, और कौन उसे निष्ठापूवर्क मानता है और कौन केवल ज़बान से ईमान को प्रकट करता है? तात्पर्य यह है कि इस्लाम के बारे में आदमी का वैचारिक और व्यावहारिक आचरण बिलकुल स्पष्ट और साफ़ हो और इसमें किसी को कोई शंका व सन्देह न रहे। यह बात इन परिभाषाओं से सहज ही समझ में आ जाती है। आप का यह प्रश्न कि लोग इससे क्यों वहशत महसूस करते हैं? मेरे विचार से इसके विभिन्न कारण हैं, इसका बुनियादी कारण तो नासमझी और जानकारी का न होना है। जब यह ज्ञान ही न हो कि इन परिभाषाओं का अर्थ व भाव क्या है और वे क्यों प्रयोग हुई हैं, तो ज़रूरी नहीं कि आदमी का ज़ेहन साफ़ और निष्पक्ष हो, इस दशा में उसके किसी भी ग़लतफ़हमी में ग्रस्त हो जाने की बहरहाल सम्भावना रहेगी। विशेष रूप से ऐसी सूरत में जब कि ग़लतफ़हमी फैलाने का विधिवत और सुसंगठित प्रयास हो रहा हो, और यह बात दिल-दिमाग़ में उतारी जा रही हो कि मुसलमान ख़ुद को बहुत ऊँचा और दूसरों को बहुत तुच्छ ख़याल करते हैं। जिस आदमी को वे काफ़िर समझते हैं उसके साथ उनका व्यवहार बहुत ही आक्रामक होता है। उनके निकट उसके वे अधिकार नहीं हैं जो एक मुसलमान के हैं और वे उसे मूल मानवाधिकार देने के लिए भी तैयार नहीं हैं। हालाँकि ये दोनों ही बातें ग़लत हैं। इस

दुनिया में जो आदमी भी किसी दृष्टिकोण, या विचार को अपनाता है वह उसे सही और सत्य तथा दूसरे दृष्टिकोण को ग़लत और झूठ (असत्य) ख़याल करता है। वरना वह उसे दूसरे विचारों पर प्रमुखता न देगा और उसे अपनाएगा भी नहीं। इस पहलू से यदि कोई मुसलमान अपने अक़ीदे को सत्य और दूसरे अक़ीदे को असत्य क़रार देता है तो उसे किसी तरह ग़लत नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक अधिकारों का सम्बन्ध है, ये दो प्रकार के हैं। एक प्रकार के वे अधिकार हैं जो इस्लामी भाईचारे की बुनिया पर एक मुसलमान के दूसरे मुसलमानों पर लागू होते हैं। इस्लाम उन अधिकारों को अदा करने की हिदायत और समर्थन करता है। ये अधिकार उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार किसी समुदाय के लोगों के मध्य एक-दूसरे के होते हैं। जहाँ तक जान-माल, इज़्ज़त-आबरू व मान-सम्मान और अधिकारों का सम्बन्ध है, इस्लाम इनसान को इनसान की हैसियत से देखता है। उसने काफ़िर और मुस्लिम के बीच कोई फ़र्क़ नहीं किया है, बल्कि दोनों के अधिकार समान बताए हैं।

प्रश्न— क्या इन पारिभाषिक शब्दों को त्यागा नहीं जा सकता?

हम मुसलमानों का रवैया इन परिभाषाओं या शब्दों के प्रयोग के सिलसिले में क्या होना चाहिए। विशेष रूप से उस सूरत में जब कि हमारे ग़ैर-मुस्लिम भाई उससे वहशत महसूस करते हैं?

उत्तर—

मैंने एक बात यह कही थी कि यदि कोई व्यक्ति प्रश्न करे कि भाई आपका धर्म क्या है? तो हमारा उत्तर होगा कि हमारा धर्म इस्लाम है और हम मुस्लिम हैं और जो व्यक्ति इस्लाम को नहीं मानता उसके बारे में कहेंगे कि वह काफ़िर है। यह एक सच्ची बात का इज़हार होगा कि कौन इस्लाम को मानता है और कौन नहीं मानता। इस पर हमारे ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की ओर से ग़म व ग़ुस्से का इज़हार नहीं होना चाहिए। मुसलमान के निकट इस्लाम एक सत्यता और सच्चाई है। इसलिए जो इस सच्चाई को न माने उसे काफ़िर, या सत्य का इनकारी कहा जाता है। यह इस्लाम

के स्वीकार या अस्वीकार का मसला है। जहाँ तक मानवीय अधिकारों का सम्बन्ध है, जैसा कि बताया गया कि वे इस्लाम से इनकार करनेवाले के भी सुरक्षित रहेंगे। यह बात अच्छे ढंग और हिकमत के साथ समझाने की आवश्यकता है। ये क़ुरआन की परिभाषाएं हैं, इन्हें हम बदल नहीं सकते। और इनका कोई दूसरा अर्थ या भाव भी नहीं ले सकते।

प्रश्न– ऐसे शब्दों का प्रयोग क्यों किया जाए जिनसे काफ़िर और मुसलमान का फ़र्क़ बिल्कुल स्पष्ट हो?

आगे बढ़ने से पहले एक और प्रश्न करना चाहूँगा, जो अस्ल में बहुत से लोग करते हैं कि आप इतना क्लियर कट क्यों होना चाहते हैं कि ये काफ़िर है और ये मुसलमान? ऐसा कोई शब्द प्रयोग क्यों नहीं करते जिससे समझा जाए कि सब एक हैं। ताकि इस्लाम के माननेवालों और न माननेवालों के बीच कोई फ़र्क व भेद ही न रहे। मिसाल के तौर पर किसी देश की तरफ़ संबद्ध कर दीजिए, हिन्दुस्तानी कहिए, पाकिस्तानी कहिए, अमेरिकी कहिए, या कुछ भी कहिए, आखिर यह आग्रह क्यों कि कुफ़्र और इस्लाम का फर्क़ बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए?

उत्तर–

हाँ यह सवाल बहुत से लोग करते हैं। लेकिन मेरा ख़याल है कि यह प्रश्न बिल्कुल सादगी पर आधारित है। इसे मैं दो-एक उदाहरणों से स्पष्ट करने का प्रयास करूँगा। एक व्यक्ति मुसलमान होता है तो उस प नमाज़ अनिवार्य हो जाती है। किसी काफ़िर से इसकी माँग नहीं होगी वि वह नमाज़ पढ़े और उस पर किसी प्रकार की सख़्ती शरीअत के अनुसा अनुचित होगी। जबकि इस्लामी स्टेट में कोई मुसलमान अगर नमाज़ नर्ह पढ़ेगा तो उस पर सख़्ती की जाएगी। वह ज़कात न दे तो उससे बलपूर्वव ज़कात वसूल की जाएगी। हज फ़र्ज़ होने पर हज को न जाए तो उस पूछताछ होगी और उसे सज़ा भी दी जा सकती है। लेकिन एक काफ़िर इस प्रकार का कोई प्रश्न न होगा और न ही इस पर उसकी पकड़ होगी इसलिए इस्लाम चाहता है कि इस्लाम के माननेवालों से अलग उनव

हैसियत समाज में जानी जाए, ताकि लोगों को मालूम हो कि ये वे लोग हैं, जिनपर इस्लामी क़ानून लागू होंगे और ये वे लोग हैं, जिनपर इस्लामी आदेश लागू नहीं होंगे। सामाजिक जीवन से एक उदाहरण लीजिए, एक मुसलमान यदि ऐसी औरतों से विवाह (निकाह) कर ले जिससे शादी करना इस्लाम में अवैध बताया गया है तो उसकी शादी ख़त्म हो जाएगी और उसे सज़ा भी होगी। जबकि एक काफ़िर अगर अपने धर्म और क़ानून के अन्तर्गत ऐसा करता है तो इस्लामी स्टेट उसे बाक़ी रखेगी। इसी प्रकार कुछ आदेशों के बारे में फ़ुक़हा (इस्लामी क़ानून के विद्वानों) ने यहाँ तक लिखा है कि इस्लाम क़बूल करने के बाद अगर कोई आदमी उन पर अमल करने से इनकार कर दे तो इस्लामी शासन उसे जेल भेज देगी। लेकिन ग़ैर-मुस्लिम इसके अपवाद होंगे और उन पर यह सज़ा लागू नहीं होगी।

प्रश्न— क्या उस व्यक्ति को भी काफ़िर कहा जाएगा जिस तक अभी इस्लाम की दावत पहुँची ही न हो?

इसी सिलसिले की एक बात और है, वह यह कि किसी ग़ैर मुस्लिम को हम काफ़िर किस वक़्त कहेंगे? स्पष्ट है कि एक व्यक्ति को उसी समय काफ़िर कहा जाएगा जब हम इस्लाम की दावत और पैग़ाम उस तक अच्छी तरह अच्छे ढंग से पहुँचा दें और वह खूब सोच-समझकर उसका इनकार कर दे। मानो इस्लाम को ठीक प्रकार से समझ लेने के बाद यदि कोई उसका इनकार करता है तो वह काफ़िर ठहरेगा। जब कि आज पोज़ीशन यह है कि हम ने दावत पहुँचाई ही नहीं तो हम अपने देशवासी ग़ैर-मुस्लिम भाइयों को काफ़िर किस तरह कह सकते हैं?

उत्तर—

इस मामले को भी अच्छी प्रकार से समझने की आवश्यकता है। एक आदमी ख़ुदा के दीन (धर्म) यानी इस्लाम को नहीं मानता है तो उसे उसका इनकारी ही कहा जाएगा। इसी को परिभाषा में काफ़िर कहा जाता है। अब रहा यह प्रश्न कि उसने ख़ुदा के दीन का इनकार सोच-समझकर

और इस्लाम के बारे में जानकारी के बाद किया है, या उसे इसका अवसर नहीं प्राप्त हुआ है? यदि उसे इसका अवसर नहीं मिला है तो यह हमारी सबसे बड़ी कोताही है। इस पर ख़ुदा के यहाँ हमसे पूछ-गछ हो सकती है, लेकिन इससे उस तथ्य का इनकार नहीं किया जा सकता कि वह इस वक्त अल्लाह के दीन को नहीं मान रहा है इसी अर्थ में वह काफ़िर है। इससे किसी को वहशत नहीं महसूस करनी चाहिए।

प्रश्न— इस्लाम क़बूल करने के लिए किसी व्यक्ति को मजबूर नहीं किया जा सकता!

दावत (दीन-पहुँचाने) के सिलसिले में एक पहलू और भी है। क़ुरआन मजीद में कहा गया है, "तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन और मेरे लिए मेरा दीन" (क़ुरआन, 109:6) यह बात कब और किन परिस्थितियों में लागू होगी?

उत्तर—

इस्लाम में यह बात बड़ी स्पष्टता के साथ बताई गई है कि किसी भी व्यक्ति को इस्लाम क़बूल करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा और यदि यह मान भी लिया जाए कि किसी ने विवश करके किसी को मुसलमान बना दिया तो उसे मुसलमान नहीं माना जाएगा। वह सहर्ष अपने धर्म पर ही बना रह सकता है। इसलिए कि यह अधिकार बहरहाल अल्लाह ने इनसान को प्रदान किया है और वह उसे बाक़ी रखना चाहता है कि इनसान चाहे तो इस्लाम क़बूल करे, चाहे तो न करे। क़ुरआन मजीद में अनेक स्थानों पर ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) से ख़िताब करके कहा गया है कि अगर अल्लाह चाहता कि सभी लोग मुसलमान हो जाएँ तो उन्हें मुसलमान ही पैदा करता। फिर तो कुफ़्र व ईमान की बहस ही ख़त्म हो जाती और आदमी की परीक्षा ही न होती, तो फिर आप क्यों चाहते हैं कि चाहे न चाहे सब मुसलमान हो ही जाएँ और इस्लाम क़बूल कर ही लें।

प्रश्न– जिहाद की सही अवधारणा

काफ़िर शब्द के अलावा आज कल एक और शब्द, या इस्लामी परिभाषा 'जिहाद' के बारे में बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ पाई जाती हैं, बल्कि मीडिया और राजनीतिक क्षेत्र इस शब्द को अत्यन्त भयानक और नापसन्दीदा बना कर पेश कर रहे हैं और उसके हवाले से इस्लाम और मुसलमानों के बारे में बदगुमानियाँ फैला रहे हैं। निवेदन है कि आप 'जिहाद' या 'इस्लामी जिहाद' का अर्थ और भाव स्पष्ट कर दें?

उत्तर–

यह बात ख़ुद हमारे ज़ेहन में भी साफ़ रहनी चाहिए और भारत वर्ष के सन्दर्भ में तो पूर्ण स्पष्टता के साथ पेश की जानी चाहिए कि कोई आदमी किसी पर हमला करता है, या उसके विरुद्ध जंग का ऐलान करता है, या उसे क़त्ल करता और मार डालता है तो उसे 'जिहाद' नहीं कहा जाएगा। जिहाद अस्ल में स्टेट या शासन का काम है और इस्लामी स्टेट को जिहाद का अधिकार है। वह अपने हालात के लिहाज़ से जिहाद कर सकती है। इस प्रकार के क़दम उठाने से पहले उसे क़ुरआन के आदेशों के अनुसार आर्थिक, दावती और नैतिक सारे पहलुओं को पेशे-नज़र रखना होगा। उसूली (नियमित) हैसियत से इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसलिए कि दुनिया के हर देश को दूसरे देशों से जंग और अमन-शान्ति का अधिकार प्राप्त है। इसके लिए उसके संविधान में गुंजाइश होती है। हुकूमतें इसकी तैयारी करती हैं और हालात के लिहाज़ से युद्ध और अमन-शान्ति के मरहले से गुज़रती हैं। इस्लामी स्टेट का भी यही मामला है कि जब उसके लिए युद्ध की परिस्थितियाँ पैदा हो जाएँ तो वह युद्ध करेगी। लेकिन लड़ाई से पहले उसे बहुत सी बातों पर सोच-विचार करना होगा, मिसाल के तौर पर क्या वह आर्थिक और राजनीतिक लिहाज़ से दुश्मन से टक्कर ले सकती है या नहीं? मान लीजिए, आज कुछ हज़ार या कुछ लाख लोगों पर सम्मिलित और आर्थिक संसाधनों से ख़ाली हाथ छोटी सी स्टेट यह एलान कर दे कि वह इस्लामी स्टेट है तो क्या वह अमेरिका,

रुस, चीन, और ब्रिटेन के ख़िलाफ़ जिहाद शुरू कर देगी? यह समझना बड़ी ज़्यादती है कि संसार के मानचित्र पर जैसे ही कोई इस्लामी स्टेट वजूद में आएगी वह युद्ध का वातावरण पैदा कर देगी और ग़ैर-इस्लामी देशों पर धावा बोल देगी। इसी प्रकार जिहाद के लिए एक शर्त यह है कि जिस देश के ख़िलाफ़ जिहाद हो, उसे बताया जाए कि इस्लाम ख़ुदा का अवतरित किया हुआ धर्म है, इसी में उसकी भलाई और कामयाबी है। आप सोच सकते हैं कि क्या आज किसी इस्लामी देश ने किसी ग़ैर इस्लामी देश के सामने यह ज़िम्मेदारी निभाई है? नहीं निभाई है तो वह युद्ध के लिए क़दम कैसे बढ़ा सकता है? तीसरी महत्वपूर्ण और बुनियादी बात जो स्पष्ट होनी चाहिए वह यह है कि युद्ध हर स्थिति में स्टेट के लिए आवश्यक नहीं है। मोटी सी बात है कि यदि प्रत्येक स्थिति में युद्ध आवश्यक होता तो इस्लाम ने संधि का आदेश क्यों दिया है? इसका अर्थ यह है कि इस्लामी स्टेट दूसरे देशों से शान्ति व अमन की सन्धियाँ कर सकती है और शान्तिपूर्वक रह सकती है। क़ुरआन मजीद में फ़रमान है— यदि दुश्मन संधि के लिए तैयार है तो संधि कर लो, कुछ ख़तरे अगर महसूस हों तब भी संधि कर लो, ख़ुदा तुम्हारी सहायता करेगा। हमारे कुछ इस्लामी विद्वानों ने कहा है कि यदि स्टेट कमज़ोर है तो संधि कर लो, लेकिन क़ुरआन ने ऐसी कोई बात नहीं कही है कि कमज़ोर हो तो सुलह (संधि) कर लो। यह तो परिस्थिति पर निर्भर करता है। आजकल केवल यह प्रश्न नहीं है कि आप पड़ोसी के मुक़ाबले में कितने मज़बूत हैं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो माहौल और जो सूरते-हाल है उसको सामने रख कर संधि व युद्ध और अमन-शान्ति और मित्रता के फ़ैसले करने पड़ते हैं। इस प्रकार के फ़ैसले अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को नज़रअन्दाज़ करके नहीं किए जा सकते। इन सब चीज़ों की क़ुरआन ने गुंजाइश रखी है और इस्लामी स्टेट इसकी रौशनी में ख़ुद फ़ैसला करेगी कि उसे क्या करना चाहिए?

प्रश्न– ग़ैर-इस्लामी शासन के अन्तर्गत रहनेवालों पर जिहाद नहीं

अभी आपने काफ़िर शब्द के बारे में भी और अब जिहाद के सिलसिले में भी विधिवत रूप से इस्लामी स्टेट का वर्णन किया है। स्पष्ट है कि हमारा देश इस्लामी स्टेट नहीं है। तो यहाँ हम मुसलमानों का व्यवहार इस सिलसिले में क्या होना चाहिए?

उत्तर–

जिहाद के बारे में यह हक़ीक़त अच्छी तरह ज़ेहन में रहनी चाहिए कि एक ऐसे देश में जहाँ मुसलमान ग़ैर-इस्लामी शासन के अन्तर्गत जीवन बसर कर रहे हों, उनके लिए जिहाद नहीं है। यह बात समझाने की ज़रूरत है। मुसलमान जब तक मक्के में थे, जिहाद नहीं था। हबूशा में जब तक मुसलमान रहे उनके लिए जिहाद का हुक्म नहीं था, इसलिए कि वे दूसरी स्टेट में शरण लिए हुए थे। अलबत्ता जब इस्लामी स्टेट की स्थापना हो गई तो उन्होंने जिहाद भी किया, संधि भी की, लड़ाइयाँ भी लड़ी और इसके लिए विधिवत नियम भी बनाए गए।

प्रश्न– क्या क़ुरआन में मुशरिकों (बहुदेववादियों) को क़त्ल करने का हुक्म दिया गया है?

कुछ और बातें भी हमारे देशवासी भाइयों में ग़लतफ़हमियों का कारण बनी हैं। हमारा दावा है कि इस्लाम तलवार के द्वारा नहीं फैला, बल्कि नैतिक-आचरण के द्वारा फैला है, लेकिन एक ग़ैर-मुस्लिम जब क़ुरआन पढ़ता है तो उसे कुछ बातें इसके प्रतिकूल दिखाई देती है। मिसाल के तौर पर सूरा तौबा की आयत पाँच में है कि "मुशरिकों को जहाँ पाओ मारो, उन्हें घेरो और घात लगा कर बैठो, लेकिन यदि वे तौबा कर लें, नमाज़ पढ़ने लगें और ज़कात दें तो उन्हें छोड़ दो।" इससे तो एक ग़ैर-मुस्लिम यही समझेगा कि इस्लाम बलपूर्वक फैला है। हम उस से अपना अक़ीदा (आस्था) बलपूर्वक मनवाना चाहते हैं?

उत्तर–

यह ख़याल सही है कि लोग इस प्रकार की आयतें पढ़ेंगे तो ग़लत

मतलब निकालेंगे। मगर यह मतलब आयतों के संदर्भ और उसकी पृष्ठभूमि को न समझने की वजह से पैदा समझा जा सकता है। अतः इसे समझने और समझाने की आवश्यकता है। एक बात तो यह कि जिन आयतों का आपने ज़िक्र किया है उनका सम्बन्ध युद्ध की स्थिति से है। स्पष्ट है जो बात युद्ध-स्थिति के लिए होगी वह शान्तिमय-स्थिति के लिए नहीं होगी। जब किसी क़ौम से आपकी लड़ाई होगी तो यही कहा जाएगा कि दुश्मन को जहाँ पाओ ख़त्म कर दो और उसकी युद्ध-शक्ति को तोड़ दो। यह नहीं कहा जाएगा कि शत्रु यदि हाथ आ जाए तो भी चुपचाप बैठे रहो। इस प्रकार की और भी जितनी आयतें है उन सबका सम्बन्ध युद्ध ही से है, जो बताती हैं कि युद्धस्थिति में मुसलमानों को क्या करना चाहिए, उनके अन्दर किस प्रकार का साहस और हौसला होना चाहिए कि वे शत्रु पर विजय पा सकें? युद्ध से संबंधित आयतों को शान्तिपूर्ण हालात पर जबकि युद्ध की स्थित न हो, लागू नहीं किया जा सकता।

प्रश्न– जिहाद किन क़ौमों से है और किन से नहीं?

इस बात की स्पष्टता की आवश्यकता महसूस होती है कि किन क़ौमों से ज़िहाद होगा और किन से जिहाद नहीं होगा तथा संधि व शान्ति का मार्ग किस प्रकार निकाला जाएगा?

उत्तर–

इस सम्बन्ध में किसी सीमा तक विस्तार में जाना होगा। क़ुरआन मजीद ने साफ़ तौर पर मुशरिकों और अहले-किताब (यहूदी और ईसाई) में अन्तर किया है। मुशरिकों से जिहाद का हुक्म है और किताबवालों के बारे में कहा गया है कि यदि वे इस्लामी स्टेट को 'जिज़िया' देने के लिए तैयार हों तो उनसे युद्ध न होगा।

मुशरिकों की दो क़िस्में हैं, एक अरब के मुशरिक और दूसरे ग़ैर अरबवाले मुशरिक। अरब मुशरिकों के बारे में ख़ुदा का फ़ैसला यह था कि वे इस्लाम क़बूल करें या फिर मुक़ाबले के लिए तैयार हो जाएँ। इसके विभिन्न कारण थे। ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) उनके बीच पैदा हुए, आप

(सल्ल॰) ने स्वयं सीधे-सीधे उनपर हुज्जत पूरी कर दी। पैग़म्बरों के द्वारा अपनी उम्मतों (समुदायों) पर जिस प्रकार हुज्जत तमाम होती है, उस तरह किसी दूसरे के द्वारा नहीं हो सकती, फिर वे ख़ाना-काबा पर अवैध रूप से क़ब्ज़ा जमाए हुए थे, जो इस्लाम का क़िबला और केन्द्र था और जिसके साथ हज जैसी बड़ी इबादत जुड़ी हैं। इन कारणों से अरब मुशरिकों के साथ शुरू ही से एक विशेष प्रकार की जंग चल रही थी। अन्तिम मरहले में उन से कहा गया कि अब फ़ैसला तलवार के द्वारा होगा। और उस पर अमल हुआ। दूसरी मुशरिक क़ौमों का मामला इससे भिन्न है। हदीसों से मालूम होता है कि ग़ैर-अरब के मुशरिकों के साथ इस तरह का मामला होगा जैसा अहले-किताब के साथ होता है। इसलिए कि आम तौर पर वे किसी न किसी रूप से आसमानी हिदायतों के क़ायल हैं और इस बात के भी दावेदार हैं कि उनके पास आसमानी किताबें हैं। इसी कारण उनको "अहले-किताब के जैसा" कहा जाता है। इसमें मूर्ति-पूजक क़ौमें भी आती हैं। वे अगर जिज़िया अदा करने के लिए तैयार हो जाएँ तो इस्लामी स्टेट उनसे युद्ध नहीं करेगी। इस्लामी इतिहास में उम्मत का इसी पर अमल रहा है।

प्रश्न— क्या इस्लाम अपने नज़रिए को जबरन थोपना चाहता है?

इस्लाम पर एक आरोप कठोरता का भी है कि वह अपने अक़ीदे और विचारों को बलपूर्वक फैलाना और दूसरी क़ौमों पर ज़बरदस्ती थोपना चाहता है। इस बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर—

इस मामले में इस्लाम का पक्ष यह है कि एक मुसलमान जहाँ कहीं भी हो, वह प्रचार-प्रसार का कर्तव्य निभाएगा, लेकिन यह बात स्पष्ट रहे कि वह कदापि ज़ोर-ज़बरदस्ती का रास्ता नहीं अपनाएगा। इसी प्रकार इस्लामी स्टेट की ज़िम्मेदारी है कि वह संसार की सभी क़ौमों के सामने इस्लाम को पेश करे। उसकी सत्यता और सच्चाई को सिद्ध करे और उसे स्वीकार करने की दावत दे। जो क़ौम उसे क़बूल करना चाहे, ख़ुशी-ख़ुशी

क़बूल कर सकती है। यदि वह इसके लिए तैयार न हो तो उसे बिलकुल मजबूर नहीं किया जाएगा। अगर कोई इस्लामी स्टेट इस स्थिति में हो कि किसी दूसरी स्टेट को अत्याचार और ज़ुल्म से निकाल कर अपनी सत्ता के अन्तर्गत ला सके और वहाँ न्यायिक- व्यवस्था स्थापित कर सके और मानवाधिकारों को बहाल कर सके तो वह ऐसा कर सकती है। जिज़िया इसी व्यवस्था को स्थापित करने के लिए लिया जाता है।

प्रश्न— दारुल-इस्लाम और दारुल-हरब का सही अर्थ

इस्लामी स्टेट की बहस के अन्तर्गत 'दारुल-इस्लाम और दारुल-हरब' की परिभाषाएँ भी प्रयोग होती हैं। इनका सही अर्थ और भाव स्पष्ट करने की आवश्यकता महसूस होती है। इसलिए कि प्रायः यह ख़याल किया जाता है कि जो देश दारुल-इस्लाम नहीं है, वह दारुल-हरब है, दोनों निरन्तर युद्ध की स्थिति में होंगे, या एक-दूसरे के ख़िलाफ़ सदैव संघर्षरत रहेंगे और बहुत से वे आदेश और मामले जो दारुल-इस्लाम के हैं वे दारुल-हरब में नहीं होंगें।

उत्तर—

एक बात यह स्पष्ट रहनी चाहिए कि दारुल-इस्लाम या दारुल- हरब और इस प्रकार की कुछ दूसरी परिभाषाएं क़ुरआन मजीद या हदीस में नहीं बयान हुई हैं। हमारे इस्लामी विधान के विद्वानों ने इस्लामी स्टेट और ग़ैर-इस्लामी स्टेट के अन्तर और उनके एक-दूसरे से सम्बन्धों के प्रकार को स्पष्ट करने के लिए ये परिभाषाएँ प्रयोग की हैं। उनके भावार्थ और उनसे सम्बन्धित आदेशों में उनके मध्य मतभेद भी हैं। उनकी बहसों से कुछ सार्वजनिक बातें सामने आती हैं। उन्हें सरल शब्दों में बयान करने की कोशिश की जाएगी।

दारुल-इस्लाम वह देश है, जहाँ इस्लामी क़ानून व आदेश घोषित रूप से लागू हों और इसमें कोई रुकावट न हो। इसके लिए आवश्यक नहीं है कि वह पूरा-पूरा मुस्लिम आबादी वाला देश हो। उसमें ग़ैर मुस्लिम भी हो सकते हैं।

दारुल-हरब वह देश है, जहाँ ग़ैर-इस्लामी नियमों व आदेशों पर ऐलानिया अमल हो रहा हो। मुसलमान भी उसके नागरिक हो सकते हैं। दारुल-हरब की इस परिभाषा ही से इस विचार का खण्डन होता है कि दारुल-इस्लाम से उसकी हमेशा जंग रहेगी या दारुल-हरब के मुसलमान अपने देश से जंग की हालत में रहेंगे। इस्लामी विद्वानों ने दारुल-हरब के स्थान पर दारुल-कुफ़्र की परिभाषा भी प्रयोग की है। यह भावार्थ के लिहाज़ से अधिक निकट है। यानी वह स्टेट जिसकी व्यवस्था इस्लाम की जगह कुफ़्र (ग़ैर-इस्लाम) पर आधारित हो और वहाँ उसके नियम व आदेश लागू हों। दारुल-हरब और दारुल-इस्लाम के जिन मामलों से इस्लामी विद्वान बहस करते हैं, उनसे भी दोनों की यह हैसियत अच्छी तरह स्पष्ट होती है। मिसाल के तौर पर दारुल-हरब में जो मुसलमान हैं, उन्हें हिजरत करके दारुल-इस्लाम अवश्य आ जाना चाहिए, या कुछ परिस्थितियों में वहीं उनका रहना अधिक उचित है। दारुल-हरब का कोई व्यक्ति क़ानूनी तौर पर दारुल-इस्लाम आए तो उसकी क्या हैसियत होगी? इसी प्रकार दारुल-इस्लाम का कोई नागरिक क़ानूनी सुरक्षाओं के साथ दारुल-हरब जाए तो उसका क्या आदेश है? उसके लिए वहाँ के नियमों की पाबन्दी क्यों ज़रूरी है? दारुल-हरब और दारुल-इस्लाम के लोगों के बीच पति-पत्नी के सम्बन्धों का क्या हुक्म है, दोनों देशों के मध्य व्यापार और लेन-देन किन उसूलों और ज़ाब्तों के तहत होगा। उनके मध्य राजनीतिक सम्बन्धों के बारे में क्या आदेश है, वग़ैरह? इस वक़्त इन मामलों और इनसे सम्बन्धित नियमों और आदेशों पर बहस नहीं करनी है। केवल यह स्पष्ट कर देना पेशे-नज़र है कि दारुल-हरब की यह कल्पना सही नहीं है कि दारुल-इस्लाम के दारुल-हरब से राजनीतिक, आर्थिक या राजनयिक किसी भी प्रकार के सम्बन्ध ही नहीं होंगे, और दोनों के मध्य युद्ध जारी रहेगा।

इस्लामी शरीअत के विद्वान एक परिभाषा दारुल-अहद का भी इस्तेमाल करते हैं, यानी वह देश जिससे इस्लामी स्टेट की सन्धि (एग्रीमेंट)

हुआ हो। इस एग्रीमेंट की शर्तें विभिन्न हो सकती हैं, इसके लिए आधि
लेन-देन का भी विकल्प है। यानी इस्लामी स्टेट किसी ग़ैर इस्लामी स्टेट
धन लेकर भी एग्रीमेंट कर सकती है और समय आने पर माल देकर
एग्रीमेंट कर सकती है। इसकी व्याख्या पेशे-नज़र नहीं है। इससे यह ब
सरलता के साथ समझी जा सकती है कि जो देश दारुल-इस्लाम नही
वह अवश्य दारुल-हरब नहीं होगा। और दारुल-हरब के माने यह नही
कि उससे युद्ध की घोषणा कर दी गई है। जो लोग इन विवरणों
परिचित नहीं हैं, वही इस प्रकार की आपत्तियाँ करते हैं।

प्रश्न— प्रतिरक्षा का अधिकार और जिहाद

आप ने बताया कि युद्ध स्टेट का मामला है। युद्ध एक देश से दू
देश के मध्य होता है। इस्लामी स्टेट पर जिहाद फ़र्ज़ होगा तो वह जि
करेगी। इस बारे में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की पोज़ीशन क्या है? उदाह
स्वरूप हमारे देश में कुछ राजनीतिक लोग मुसलमानों की जान-माल
पीछे पड़े हैं। उनकी नीतियों से हमारी इज़्ज़त और आबरू को ख़तरे
हो गए हैं। उन लोगों की मुस्लिम-दुश्मनी दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होती जा
है। इस सूरत में यदि मुसलमान टकराव के लिए कुछ सोचते हैं, तो
यह जिहाद की परिभाषा में आएगा?

उत्तर—

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इस सिलसिले में इस्लाम वही
कहता है जो दुनिया का हर लोकतांत्रिक संविधान कहता है कि आ
की जान-माल और इज़्ज़त-आबरू पर हमला हो तो उसे प्रतिरक्षा का
अधिकार है। उसके इस हक़ को चैलेंज नहीं किया जा सकता। प्रति
की विभिन्न सूरतें हो सकती हैं। एक सूरत तो यह है कि किसी ने
बाक़ायदा गोली चला ही दी तो आप सोचे कि अब हमें प्रतिरक्षा क
है। दूसरी सूरत यह कि एक व्यक्ति बन्दूक़ लेकर आपकी तरफ़ बढ़
है तो उसके गोली दाग़ने से पहले आप अपनी रक्षा में उस पर गोली च
दें। इसी प्रकार किसी के घर में चार आदमी घुस जाएँ, लूट-मार मचाएँ

घर का मालिक उन चारों को जान से मार सकता है। इसलिए कि यह सब प्रतिरक्षा की सूरतें हैं। इनमें से कोई भी क़दम ग़लत और क़ानून के अनुसार जुर्म नहीं है। इस्लाम यही कहता है। आज संसार का प्रत्येक लोकतांत्रिक संविधान इसका समर्थन करता है। इसी प्रकार बदला लेने का अधिकार भी इनसान को प्राप्त है। बदला लेने के अधिकार का अर्थ यह है कि अगर इनसान के साथ अत्याचार हुआ है, तो जितना अत्याचार हुआ है, उसके बराबर बदला ले सकता है, इसके लिए क़ानून में जगह होनी चाहिए। एक व्यक्ति ने किसी की टाँग तोड़ दी तो इस्लाम कहता है कि हम उसे भी यह अधिकार देंगे कि वह उसकी टाँग तोड़ दे, या दोषी व्यक्ति उसका मुआवज़ा दे। किसी ने किसी का सिर फोड़ दिया तो उसके वारिस को यह अधिकार होना चाहिए कि उस पर क़िसास (सिर फोड़ने का अर्थदण्ड) का दावा करे। सांसारिक क़ानून भी सैद्धांतिक रूप से इसे स्वीकार करते हैं, विवरणों में मतभेद है। उसके लिए विभिन्न प्रकार की सज़ाएँ सुझाई जाती हैं। क़ुरआन और हदीस में यह बात बहुत स्पष्टता के साथ बयान हुई है कि आदमी को बदला लेने का भी अधिकार है और प्रतिरक्षा का भी। लेकिन परिभाषा में यह जिहाद नहीं है।

प्रश्न— जिज़िया का सही अर्थ

आपने इस्लामी स्टेट के संदर्भ में अभी जिज़िया का ज़िक्र किया है, यह भी ग़ैर-मुस्लिमों के लिए एक तकलीफ़देह परिभाषा बन गया है। इसमें वे अपनी तौहीन और अनादर समझते हैं, आप इसको भी कुछ स्पष्ट कर दें।

उत्तर—

इस्लामी स्टेट के ग़ैर-मुस्लिम नागरिकों को 'ज़िम्मी' कहा जाता है। उनसे एक सुनिश्चित टैक्स लिया जाता है, जिसे जिज़िया कहा जाता है। यह इस बात की दलील और प्रमाण है कि उन्होंने इस्लामी सत्ता को स्वीकार कर लिया है और वे उसके नागरिक होने की हैसियत से यह टैक्स अदा कर रहे हैं। इस्लामी शासन में ज़िम्मी की जान, माल, जायदाद

और व्यक्तिगत क़ानून इस्लामी शरीअत के अन्तर्गत सुरक्षित होंगे। उनपर हाथ उठाना क़ानूनी जुर्म होगा। ज़िम्मी को सैनिक सेवाओं के लिए विवश नहीं किया जाएगा। बल्कि स्टेट की प्रतिरक्षा के लिए उससे आर्थिक माँग भी नहीं होगी। इस्लामी स्टेट में ये सभी ज़िम्मेदारियाँ मुसलमानों की समझी जाती हैं। जिज़िये की रक़म को सुनिश्चित करने में इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि वह उनकी माली (आर्थिक) हैसियत के अनुसार हो, और वे उसे आसानी से अदा कर सकें। जो व्यक्ति जिज़िया अदा करने की स्थिति में न हो उससे जिज़िया नहीं लिया जाएगा।

प्रश्न— जिज़िया सिर्फ़ ग़ैर-मुस्लिमों से क्यों लिया जाता है?

अस्ल प्रश्न यह है कि जिज़िया या टैक्स सिर्फ़ ग़ैर-मुस्लिमों से क्यों लिया जाता है और मुसलमानों से क्यों नहीं लिया जाता, क्या यह नागरिकों के मध्य भेदभाव नहीं है?

उत्तर—

जो मुसलमान साहिबे-निसाब (धनवान) है, उस पर ज़कात फ़र्ज़ (अनिवार्य) है, सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब है, कुछ और सदक़ात (दान देने) का भी उसे आदेश दिया गया है। आप यह प्रश्न क्यों नहीं करते कि इस प्रकार के आर्थिक अनुदान ग़ैर-मुस्लिमों पर क्यों अनिवार्य नहीं करते है? अस्ल बात यह है कि इसे मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम के दृष्टिकोण से देखना ठीक नहीं है। जो बात देखने की है वह यह है कि इस्लामी स्टेट में ज़िम्मियों के अधिकार पूरी तरह सुरक्षित हैं या नहीं? जब ये सुरक्षित हैं और वे स्वतन्त्रता से इन से लाभ प्राप्त कर सकते हैं तो जिज़िया का कोई महत्व नहीं रह जाता। इसी कारण से इस्लामी स्टेट में कभी ज़िम्मियों ने जिज़िया को बहस का विषय नहीं बनाया और न उसे कभी बोझ समझा। वे अपने अधिकारों से लाभ प्राप्त करते रहे।

प्रश्न— क्या क़ुरआन के कुछ आदेश निरस्त हो गए हैं?

क़ुरआन मजीद में कुछ आयतें ऐसी हैं जिन्हें उनके सही संदर्भ में न समझने की वजह से ग़लत-फ़हमियाँ पैदा हो सकती है, आपने इसको

स्पष्ट कर दिया है। इस सिलसिले का एक प्रश्न यह है कि क्या क़ुरआन मजीद की कुछ आयतें या उसके कुछ आदेश निरस्त भी हुए हैं? यह प्रश्न इसलिए उठता है कि कुछ आलिमों का यह विचार है कि क़ुरआन मजीद में विरोधियों के साथ माफ़ी और दर-गुज़र की जो शिक्षा दी गई है, जिहाद का हुक्म आने के बाद वे उनके हक़ में निरस्त हो गई। क्या यह ख़याल सही है?

उत्तर–

पहले निरस्त का मतलब समझ लीजिए, निरस्त का अर्थ यह है कि एक आदेश किसी विशेष अवधि के लिए दिया गया था, उस अवधि के बीत जाने के बाद वह हुक्म ख़त्म हो गया। मिसाल के तौर पर क़ुरआन मजीद में कहा गया था कि आदमी मौत से पहले अवश्य वसीयत करे और बता दे कि वह अपनी सम्पत्ति में से किसे क्या देना चाहता है? लेकिन जब विरासत का क़ानून आया तो वसीयत का हुक्म बाक़ी नहीं रहा। वह वसीयत करे या न करे विरासत लागू हो जाएगी। उसके लिए वसीयत करना ज़रूरी भी न रहा। कोई वसीयत करना ही चाहता हो तो ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा कि एक तिहाई माल के अन्दर ही वसीयत कर सकता है। एक और उदाहरण लीजिए, क़ुरआन मजीद में कहा गया है कि यदि कोई औरत बदकारी करे तो उसे घर में क़ैद कर दिया जाए, लेकिन जब ज़िना की हद (सज़ा) अवतरित हो गई और औरत-मर्द की सज़ा सुनिश्चित हो गई तो पहले का हुक्म ख़त्म हो गया। इसका कारण यह है कि निरस्त और अनिरस्त दोनों आदेशों में से एक ही पर अमल हो सकता है। बाद के आदेश ने बताया कि अब पहले हुक्म पर अमल नहीं होगा। लेकिन हमारे उलमा (विद्वान) कभी-कभी बहुत से उन आदेशों को भी निरस्त बता देते हैं जिनके निरस्त होने का कोई तथ्य पर आधारित प्रमाण नहीं होता। हालात और मौक़ों के लिहाज़ से दोनों प्रकार के आदेशों पर अमल हो सकता है। अब आप वही मिसाल ले लीजिए जो आपने पेश की है। क़ुरआन में कहा गया है कि दुश्मनों के साथ

माफ़ी-तलाफ़ी से काम लो और उनको माफ़ कर दो, धैर्य से काम लो। कहा जाता है कि जिहाद का हुक्म आ जाने के बाद अब दर-गुज़र से काम नहीं लिया जाएगा, जब कि दोनों आदेशों पर मौक़ा व महल के लिहाज़ से अमल हो सकता है। यहाँ उनमें से किसी को अनिरस्त और किसी को निरस्त मानने की आवश्यकता ही नहीं है।

प्रश्न– इस्लाम से ख़ौफ़ व दहशत क्यों?

यह ठीक है कि हमारे देशवासी भाई इस्लामी आदेशों और परिभाषाओं के भावार्थ से अनजान हैं। इसलिए ग़लतफ़हमियों में पड़े हुए हैं या इस्लाम विरोधी दुष्प्रचार का शिकार हो जाते हैं। यह भी सही है कि मुसलमानों ने देशवासियों तक इस्लामी आदेश समझाने व पहुँचाने का वैसा प्रयास नहीं किया जैसा कि उसका हक़ था। लेकिन ऐसा भी नहीं कि यह काम सिरे से हुआ ही नहीं। आज अंग्रेज़ी और हिन्दी के अलावा अधिकांश भारतीय भाषाओं में क़ुरआन मजीद के अनुवाद मौजूद हैं। इस्लामी साहित्य (लिट्रेचर) भी उपलब्ध है। ग़ैर-मुस्लिम भाइयों से सम्बन्ध बढ़ाने की कोशिशें भी किसी न किसी दर्जे में होती रही हैं। फिर आख़िर क्या वजह है कि हर तरफ़ ऐसा वातावरण बन गया है कि बहुत से लोग न केवल बदगुमानियों में ग्रस्त रहते हैं, बल्कि इस्लाम के नाम से ही डरते हैं, जैसे वह विश्व-शान्ति के लिए सबसे बड़ा ख़तरा है। उसके नाम ही से हर तरफ़ भय और घबराहट का वातावरण पाया जाता है?

उत्तर–

इस सम्बन्ध में मेरा ख़याल यह है कि कुछ बातें हमें सामने रखनी चाहिएँ। एक बात तो यह है कि यह तो हम नहीं कह सकते कि इस्लाम के ज़िक्र से सारी दुनिया भय और घबराहट में है या नहीं, लेकिन यह हम ज़रूर कहेंगे कि अगर कहीं है तो यह भय और दहशत पश्चिम ने विशेषकर अमेरिका ने पैदा कर रखी है। एक लम्बे-समय से पश्चिम ने इस्लामी आस्थाओं और विचारों ही को नहीं बल्कि उसकी तहज़ीब और सामाजिकता को और उसकी पूरी शरीअत ही को आलोचना का केन्द्र

बना रखा है कि इस्लाम में कठोर सज़ाएँ हैं, वहशियाना दण्ड है, दासों और दासियों की कल्पना है, बहुविवाह वैध है आदि। इस प्रकार इस्लाम की तस्वीर बिगाड़ने का भरसक प्रयास किया गया है और अब भी यह प्रयास जारी है कि खुद मुसलमान उस से शर्मिन्दगी महसूस करने लगें, और दुनिया उसे जंगली दौर की यादगार समझ कर रद्द कर दे। अमेरिका भी यह सोचता रहा और दुनिया को भी यह समझाता रहा कि इस्लाम का दौर बीत चुका है। अब इसकी आवश्यकता नहीं रह गई है। इस समय किसी प्राचीन विचार की नहीं, एक नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था (New World Order) की आवश्यकता हैं। यूरोप भी और अमेरिका भी सोच रहे थे कि इसके बाद इस्लाम की ओर लोगों का रुझान नहीं बढ़ेगा। मुसलमान और इस्लाम उनके लिए बौद्धिक, वैचारिक और सांस्कृतिक किसी भी मैदान में परेशानी का कारण नहीं होंगे।

लेकिन सौ-डेढ़ सौ साल के प्रयासों के बावजूद वे इसमें सफ़ल नहीं हो सके। उन्होंने महसूस किया कि वे आम मुसलमानों को इस्लाम से भटका नहीं पा रहे हैं, बल्कि इधर क़रीब के ज़माने में उनके अन्दर इस्लाम की ओर पलटने, उसे जीवित व ग़ालिब (सत्तारूढ़) करने का रुझान बढ़ रहा है। जो नई नस्लें आ रही हैं और जो खुद पश्चिम की गोद में पल-बढ़ रही हैं, वे भी बजाए इसके कि उनकी तहज़ीब में गुम हों और इस्लाम से नफ़रत करने लगें, उसकी तरफ़ पलट रही हैं और जो लोग पलट नहीं रहे हैं, उनको पूरा एहसास है कि वह ग़लत कर रहे हैं। दूसरे यह कि यह सोच आम होती जा रही है कि इस्लाम को सरबुलन्द और ग़ालिब होना चाहिए। यह भी उन्होंने देखा कि दुनिया का कोई मुस्लिम देश ऐसा नहीं है, जहाँ यह एहसास गम्भीरता के साथ मौजूद न हो। उन्होंने मुस्लिम देशों के शासकों को तो अपने कन्ट्रोल में कर लिया है, लेकिन आम जन उनसे सख़्त घृणा कर रहे हैं और इस्लाम को जीवित करने की भावना उनके अन्दर अब भी पाई जाती है। उनके सीनों में यह तमन्ना पल-बढ़ रही है कि इस्लाम एक न एक दिन ग़ालिब हो कर

रहेगा। इसलिए उन्होंने सोचा कि इस्लाम को इस प्रकार पेश करो कि इस्लाम आएगा तो आतंकवाद लेकर आएगा, ख़ून-ख़राबा लेकर आएगा और मानव अधिकारों को बिल्कुल समाप्त कर देगा। इसके लिए उन्होंने इस्लाम को आतंकवाद से जोड़ दिया। इसमें कोई शंका नहीं कि राजनीतिक पॉलिसी के अन्तर्गत कभी-कभी इस्लाम की प्रशंसा भी की जाती है लेकिन वास्तव में उसे विरोधी ही की हैसियत से देखा जा रहा है और उसके बारे में दुश्मनी की भावनाएँ कहीं छिपी हैं और कहीं खुली हैं। आज पूरी दुनिया अमेरिका के प्रभावाधीन है, इसलिए वह जो कुछ कहता है उसे संसार के दूसरे देश भी दोहराते हैं। हमारे देश में भी ऐसे संगठन और जमाअतें हैं जो इस्लाम को अपना विरोधी समझतीं और उससे भयभीत होती हैं।

प्रश्न— हिन्दुस्तान में इस्लाम विरोधी दुष्प्रचार का कारण

यह बिल्कुल सही है कि इस्लाम विरोधी दुष्प्रचार की मौजूदा लहर अमेरिका और इसराईल की ओर से चलाई गई है या यों कहा जाए कि इसमें तीव्रता आई है। मगर हमारे ग़ैर-मुस्लिम भाई, जिनमें अच्छी-ख़ासी तादाद पढ़े-लिखे लोगों की है, हक़ीक़त पसन्दी से आख़िर क्यों काम नहीं लेते? क्या कारण है कि प्रत्येक अप्रिय घटना को मुसलमानों से जोड़ दिया जाता है और लोग विश्वास भी कर लेते हैं, ऐसा क्यों है?

उत्तर—

इसकी बड़ी वजह तो यह है कि इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध दुष्प्रचार का आप उस प्रकार मुक़ाबला नहीं कर पा रहे हैं जैसे मुक़ाबला करना चाहिए। पश्चिमी देशों के पास आधुनिक प्रचार-प्रसार के साधन हैं। वह निरन्तर और विभिन्न पहलुओं से यह बता रहा है कि इस्लाम दुनिया के लिए बड़ा ख़तरा है और वह आतंकवाद का ध्वजावाहक है। दुनिया में जहाँ कहीं भी आतंक और अत्याचार की घटनाएँ हो रही हैं, उसके पीछे इस्लाम और उसके माननेवाले हैं। इससे संजीदा (गम्भीर) लोग भी प्रभावित हो जाएँ तो कोई अचम्भे की बात नहीं है। इधर ज़रा हमारा हाल

देखिए कि मीडिया जिस बड़े पैमाने पर इस्लाम के विरुद्ध दुष्प्रचार कर रहा है, क्या एक प्रतिशत भी हमारी ओर से उसका जवाब दिया जा रहा है? फिर हम कैसे आशा करें कि दूसरा पहलू भी उनके सामने आएगा। आज मीडिया में हम जैसे लोगों के लिए कोई जगह नहीं है। कोई यह पूछने के लिए तैयार नहीं है कि इस्लाम के बारे में ये अप्रिय और ख़तरनाक विचार पाए जाते हैं, आप क्या सोचते हैं? आप तो अपने आदमी हैं इसलिए आ गए हम से पूछने के लिए, मीडियावालों का हाल यह है कि उनकी मर्ज़ी या मौजूदा रुझान के विरुद्ध कोई बात कह दीजिए, उसे वे न छापेंगे और न प्रसारित करेंगे, यह मेरा तजुर्बा है। सबने मिलकर जैसे फ़ैसला कर लिया हो कि वे इस्लाम के बारे में पश्चिम का समर्थन करेंगे। हमारी आवाज़ दबी हुई है। मान लीजिए कि अगर कुछ लोग किसी अच्छे-ख़ासे सज्जन और ईमानदार व्यक्ति को चोर-चोर और डाकू-डाकू कहना शुरू कर दें और उस बेचारे की ज़बान बन्द कर दी जाए और उसे बोलने ही न दिया जाए तो क्या वह वास्तव में चोर साबित हो जाएगा। लेकिन जो लोग सीधे-साधे हैं वे यही समझेंगे कि जब सब लोग कह रहे हैं कि यह व्यक्ति चोर और डाकू है तो वाक़ई डाकू ही होगा।

प्रश्न— मुसलमान क्या करें?

आप बताएँ कि इस सूरते-हाल से निपटने, ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की ग़लतफ़हमियाँ दूर करने और इस्लाम विरोधी लहर का उत्तर देने के लिए मुसलमानों को क्या करना चाहिए?

उत्तर—

मुसलमानों को अपनी पूरी शक्ति इसमें लगानी चाहिए कि हमारी बात भी उसी ज़ोर और शक्ति के साथ आए जैसे विरोधी क्षेत्रों की बात आ रही है। बड़े दुख की बात है कि इस आवश्यकता का उस प्रकार एहसास नहीं है जैसा कि होना चाहिए। इतनी बड़ी मुस्लिम उम्मत (समुदाय) इसका फ़ैसला कर ले और अपने आर्थिक संसाधनों और ज़ेहनी व वैचारिक क्षमताओं को प्रयोग करने लगे तो पश्चिम और उसके

सहयोगियों के इस्लाम के विरुद्ध दुष्प्रचारों का उत्तर दिया जा सकता है और संसार के सामने उसकी बेदाग़, स्वच्छ और सुन्दर तस्वीर आ सकती है। एक दूसरी बात जो उससे भी कठिन है, वह यह है कि हमारी छवि देशवासियों के सामने बेहतर हो, यदि एक व्यक्ति कहे कि अमुक आदमी ग़लत आदमी है, तो दस-बीस आदमियों को कहना चाहिए कि वह ग़लत नहीं है। यहाँ तो एक आदमी भी यह कहनेवाला नज़र नहीं आता। जैसे नबी (सल्ल॰) का मामला था, नबी (सल्ल॰) के साथियों (रज़ि॰) का मामला था, हजारों आरोप लगाए जाते थे, लेकिन कोई भी आदमी आप (सल्ल॰) को ग़लत कहने का साहस नहीं करता था। किसी सहाबी के बारे में भी इस प्रकार की बात कहने की हिम्मत नहीं थी। आज सूरते-हाल यह है कि जो सेकुलर या साफ़ ज़ेहन के लोग हैं, वे भी यह कहते हैं कि हमारे और तुम्हारे बीच व्यावहारिक जीवन में कोई अन्तर नहीं है। उनके सोचने का अन्दाज़ यह है कि सब में बिगाड़ है। सब एक जैसे हैं। हम भी चोर तुम भी चोर, हम भी रिश्वत लेते हैं तुम भी रिश्वत लेते हो, हम भी पीते हैं तुम भी थोड़ा-बहुत पीते ही हो, हम सभी इस हम्माम में नंगे हैं। हमारे और तुम्हारे मध्य इसके अतिरिक्त क्या अन्तर है कि तुम जुमा के दिन मस्जिद चले जाते हो, हम भी ज़रूरत पड़ने पर मन्दिर जाते ही हैं! यह हमारी तस्वीर है। जो अति कठिन काम है, वह यह है कि हम इस्लामी जीवन का बेहतरीन आदर्श पेश करें, दुनिया को मालूम हो कि एक मुसलमान ऐसा होता है, लेकिन किसी में इसका साहस ही नहीं है, हौसला ही नहीं है। आप अपने अख़बार के ज़रिए इसका वातावरण बनाएँ, आप विरोधियों का उत्तर देते हैं, उनकी इस्लाम-दुश्मनी पर आलोचना करते हैं, यह आवश्यक है। साथ ही मुसलमानों को भी उनकी कमियों व कमज़ोरियों की ओर ध्यान दिलाएँ कि अपना व्यवहार बेहतर बनाएँ और पेश करें, ताकि दुनियावाले कह सकें कि मुसलमान ऐसा होता है, ऐसा नहीं होता। दोनों स्तरों पर काम होना चाहिए।

☆☆☆